

Threats to the concept of social justice

सामाजिक न्याय की अवधारणा और खतरे

**SOCIAL JUSTICE, BASICALLY, IS AN INCESSANT BATTLE
AGAINST PRIVILEGES-BASED MERITOCRACY**

**सामाजिक न्याय अपने मूल रूप में विशेषाधिकार
आधारित योग्यतावाद के विरुद्ध एक निरंतर युद्ध है**



PRAMOD RANJAN

Those who think and reflect and those who dream of building a better society are concerned over the threats to the concept of social justice that have been lingering over the last few years in India. And, mind you, the opponents of social justice are not the only source of these threats; the genesis of some of the threats is within the social justice movement itself. The biggest threat is the narrowing down of this very concept. Social justice means providing justice to all those people who have had to face injustice having been subject to some form of dominance. They may have had to face injustice due to their Varna, ethnicity, profession, gender, economic status, region, religion, tradition, language or physique. Social justice, basically, is an incessant battle against privileges-based meritocracy. Humanism and compassion are the cornerstones of this battle. The idea of securing an equal opportunity for all and the theory of social diversity are its arms and ammunitions.

But today, the politics of social justice has come to mean electoral victories of a few people hailing from deprived communities. At the systemic level, it has been confined to reservations in government jobs and in government-run institutions of higher learning that, more often than not, provide low-quality education. At the most, some people demand that reservations should be extended to the private sector. This is considered the be-all and end-all of the battle for social justice.

Social justice coming to mean securing degrees or jobs to a few is in itself a big threat to the concept. The ultimate dream of social justice is building a society free from all kinds of discriminations. In this sense, it is an extension of the thoughts of Buddha, Christ, Kabir and Marx. Those battling for social justice are, undoubtedly, responsible

प्रमोद रंजन

जो

लोग सोचते-समझते हैं तथा एक बेहतर समाज का स्वप्न देखते हैं, उन्हें भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा पर पिछले कुछ वर्षों से मंडरा रहे खतरों ने चिंतित कर रखा है। ये खतरे सामाजिक न्याय के विरोधियों के ओर से भी हैं, और आंतरिक भी।

सबसे बड़ा खतरा इस अवधारणा के संकुचन का है। सामाजिक न्याय का अर्थ है, उन सभी व्यक्तियों को न्याय उपलब्ध करवाना, जिन्हें किसी भी प्रकार के वर्चस्व के कारण अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। यह अन्याय चाहे वर्ण अथवा नस्ल आधारित हो, पेशा आधारित, लिंग आधारित, धन आधारित, भौगोलिक क्षेत्र पर आधारित, धर्म आधारित, संस्कृति आधारित, परंपरा आधारित, भाषा आधारित, अथवा शारीरिक संरचना पर ही आधारित क्यों न हो। सामाजिक न्याय अपने मूल रूप में विशेषाधिकार आधारित योग्यतावाद के विरुद्ध एक निरंतर युद्ध है। मानवतावाद और करुणा इस युद्ध के स्थायी भाव हैं तथा जीवन के हर क्षेत्र में सभी को समान अवसर की उपलब्धता के लिए संघर्ष व सामाजिक विविधता का सिद्धांत, इस युद्ध के शस्त्र और अस्त्र।

लेकिन आज सामाजिक न्याय की राजनीति का अर्थ वंचित तबकों से आने वाले कुछ लोगों का चुनाव जीत जाना माना जाने लगा है। व्यवस्थागत स्तर पर इसे सरकारी नौकरियों और निम्न गुणवत्ता वाली शिक्षा देने वाले ठप्स सरकारी उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण तक सीमित कर दिया गया है। अधिक से अधिक कुछ लोग निजी क्षेत्र की नौकरियों में भी आरक्षण की मांग करते हैं। इसे ही 'सामाजिक न्याय' की लड़ाई का अंतिम छोर मान लिया गया है।

सामाजिक न्याय का यह अर्थ प्रचलित होना कि- यह वंचित तबकों को मात्र कुछ डिग्रियां दिलाने अथवा सरकारी-निजी क्षेत्र में नौकर बनने के लिए है- अपने आप में ही इस अवधारणा के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है। सामाजिक न्याय का सपना तो सभी प्रकार के भेदभाव से रहित समाज का सपना है। इस अर्थ में यह बुद्ध, ईसा, कबीर और मार्क्स के भावों का विस्तार है। इस भाव के संकुचन के लिए इस लड़ाई को लड़ने वाले भी जिम्मेवार हैं, लेकिन वास्तव में भारतीय समाज की वचस्ववादी शक्तियां भी यही चाहती हैं कि यह लड़ाई इसी संकुचित रूप में रहे तथा उनके अधीन विभिन्न प्रकोष्ठों में चलती रहे।



THE ULTIMATE DREAM OF SOCIAL JUSTICE IS BUILDING A SOCIETY FREE FROM ALL KINDS OF DISCRIMINATIONS. IN THIS SENSE, IT IS AN EXTENSION OF THE THOUGHTS OF BUDDHA, CHRIST, KABIR AND MARX

सामाजिक न्याय का सपना तो सभी प्रकार के भेदभाव से रहित समाज का सपना है। इस अर्थ में यह बुद्ध, ईसा, कबीर और मार्क्स के भावों का विस्तार है

for the constriction of the meaning of the concept. But the dominant section of Indian society also wants the battle to be confined to these issues and to be waged between different groups – all under their thumb.

There is an example from Indian politics to illustrate this point. In the battle for social justice in India, the Dwijis are on one side and the Shudras, Ati-shudras and Tribals – who are in a majority – on the other. The Dwijis are a minority while Shudras, Ati-shudras and Tribals are the majority. Both the major political parties – Congress and Bharatiya Janata Party – have OBC cells, Dalit and Tribal cells in their organizational set-up. This, in a sense, is an attempt to split the struggle of the Bahujan sections into different cells. Once the different Bahujan communities become confined to different cells, the minority Dwijis automatically become the mainstream of Indian politics. This leaves the Bahujans with very little to do apart from counting the number of members of their community in Parliament, the Council of Ministers, PMO and other key centres of power. To perpetuate their domination, these forces have distorted the meaning of the word “minority”. Today, in Indian politics, the term “minority” has become synonymous with Muslims. There are separate cells for Muslims in all parties. Muslims, who form 13.4 per cent of India’s population, are not a true minority – at least not in terms of the number of their votes. If Muslims are the minority, who are the majority? Some may say Hindus. But then, why are there OBC and Dalit cells for the Hindus? In a democracy, the majority plays a very important role. That is why the elite class uses various stratagems at the political and social level to break the unity of the Pasmanda Muslims, Dalits, Bahujans, Tribals and other real minority communities like Christians (2.3 per cent) and Buddhists (0.8 per cent), which, taken together, constitute the broad “Bahujan” category.

On the other hand, majoritarianism and social justice are poles apart. That is why the distinction between “Bahujanism” and majoritarianism needs to be clearly understood. The word “Bahujan” has its origins in the Buddhist maxim of “Bahujan Hitay, Bahujan Sukhay”. “Bahujanism” means that which is in the interest of the maximum number of people. Repulsing the efforts of the minority forces to establish their domination is an integral part of Bahujanism. Bahujanism means letting everyone grow and prosper. No one should be allowed to dominate anyone. Majoritarianism, on the other hand, means the social, economic and political domination of the majority over the minority and the undermining of the latter’s culture.

This is what the politics of Hindutva is basically trying to achieve, although historically, in India, the politics of Brahmanism – which is basically minoritarianism and not majoritarianism – has been stronger than that of Hindutva. We will have to protect the concept of social justice from both these extremes and reach out to the last person of the last community who, for some reason, has had to face deprivation.

Reservations are important. They are an important tool to provide social representation. The only thing that the Bahujans of India have received from the state is reservation. They do not have any representation in economic, social and cultural power centres.

इसे भारतीय राजनीति के एक उदाहरण से समझ सकते हैं। भारत में सामाजिक न्याय का संघर्ष मुख्य रूप से द्विजों और शूद्रों-अतिशूद्रों-आदिवासियों के बीच है। द्विज अल्पसंख्यक हैं जबकि शूद्र-अतिशूद्र-आदिवासी बहुसंख्यक। देश के लोकतंत्र पर राज करने वाली दोनों प्रमुख पार्टियां - कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी - अपने संगठन में ओबीसी प्रकोष्ठ, दलित प्रकोष्ठ, आदिवासी प्रकोष्ठ आदि रखती हैं। यह बहुजन तबकों के संघर्षों को एक प्रकार से कोष्ठकों में बंद करने का तरीका है। जब ये बहुजन समुदाय उनके प्रकोष्ठों में बंद हो जाते हैं तो स्वतः ही अल्पसंख्यक द्विज भारतीय राजनीति की मुख्यधारा बन जाते हैं। बहुजनों का काम सिर्फ इतना रह जाता है कि वे संसद, मंत्रीमंडल में अपने समुदाय के प्रतिनिधियों तथा प्रधानमंत्री कार्यालय और अन्य प्रमुख सत्ता संस्थानों में अपने समुदायों के अधिकारियों की घटती-बढ़ती संख्या की गिनती करते रहें! भारतीय राजनीति ने इस वचस्व को बनाए रखने के लिए ‘अल्पसंख्यक’ शब्द के अर्थ को ही भ्रामक बना दिया है। आज भारतीय राजनीति में इसका प्रचलित अर्थ है मुसलमान। मुसलमानों के लिए सभी पार्टियों में अलग प्रकोष्ठ होते हैं। देश में 13.4 फीसदी आबादी की हिस्सेदारी रखने वाले मुसलमान वास्तविक अल्पसंख्यक नहीं हैं, वोटों की संख्या की दृष्टि से तो कतई नहीं। अगर मुसलमान अल्पसंख्यक हैं तो बहुसंख्यक कौन है? कोई कह सकता है कि हिंदू बहुसंख्यक हैं। तो फिर हिंदुओं के लिए दलित प्रकोष्ठ और ओबीसी प्रकोष्ठ क्यों हैं? लोकतंत्र में यह बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है कि बहुसंख्यक कौन है। यही कारण है कि मुसलमानों का पसमांदा तबका तथा दलित, बहुजन और आदिवासी तथा अन्य वास्तविक अल्पसंख्यक ईसाई (2.3 प्रतिशत) और बौद्ध (0.8 प्रतिशत) को मिलाकर जिस ‘बहुजन’ की अवधारणा तैयार होती है, उसे तोड़ने के लिए भारत का प्रभु वर्ग इस प्रकार की तिकड़में राजनैतिक और सामाजिक स्तर पर अपनाता है।

दूसरी ओर, बहुसंख्यकवाद और समाजिक न्याय एक दूसरे के एकदम विपरीत हैं। इसलिए बहुजनवाद और बहुसंख्यकवाद के बीच के फर्क को भी समझना चाहिए। ‘बहुजन’ शब्द बुद्ध के सूत्र वाक्य ‘बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय’ से आया है। बहुजनवाद का अर्थ है, जो अधिकतम लोगों के हित के लिए हो। वचस्व स्थापित करने की इच्छुक अल्पसंख्यक शक्तियों का निषेध इसमें समाहित है। बहुजनवाद का अर्थ है, सभी फलों, फूलों, खिलें, कोई किसी पर वचस्व स्थापित न करे। जबकि बहुसंख्यकवाद का अर्थ है बहुसंख्यक लोगों का अल्पसंख्यकों पर आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक वचस्व व उनकी संस्कृति का हरण।

हिंदुत्व की राजनीति अपने मूल रूप में यही करने की कोशिश करती है। हालांकि हिंदुस्तान में वास्तव में हिंदुत्ववाद से अधिक मजबूत ब्राह्मणवाद की राजनीति रही है, जो वास्तविक में अल्पसंख्यकवाद है, न कि बहुसंख्यकवाद।

सामाजिक न्याय की अवधारणा को इन दोनों अतियों से हमें बचाना होगा तथा इसे उस अंतिम समुदाय और अंतिम व्यक्ति तक पहुंचाना होगा, जिसे किसी भी कारण से वंचना झेलनी पड़ी है।

आरक्षण निश्चित रूप से बहुत महत्वपूर्ण है। यह सामाजिक प्रतिनिधित्व को प्रदर्शित करने के लिए एक आवश्यक उपकरण है। वास्तविकता यह भी है कि राज्य की ओर से भारत के बहुजन तबकों को जो एकमात्र चीज आज तक मिली है, वह ‘आरक्षण’ ही है। इसके अतिरिक्त आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सत्ता के केंद्रों में उनकी कोई भागीदारी है ही कहां?

विश्व के सबसे अमीर लोगों की सूची में भारतीयों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। इस प्रकार की सूचियां पिछले कई वर्षों से समाचार-माध्यमों की सुर्खियां बन रही हैं। उन खरबपतियों की तो छोड़िए, भारत के सबसे अमीर सैकड़ों लोगों की सूची में भी न कोई ओबीसी है, न कोई

“Bahujanism” means that which is in the interest of the maximum number of people. Repulsing the efforts of the minority forces to establish their domination is an integral part of Bahujanism. Bahujanism means letting everyone grow and prosper. No one should be allowed to dominate anyone. Majoritarianism, on the other hand, means the social, economic and political domination of the majority over the minority and the undermining of the latter’s culture

बहुजनवाद का अर्थ है, जो अधिकतम लोगों के हित के लिए हो। वर्चस्व स्थापित करने की इच्छुक अल्पसंख्यक शक्तियों का निषेध इसमें समाहित है। बहुजनवाद का अर्थ है, सभी फलों, फूलों, खिलों, कोई किसी पर वर्चस्व स्थापित न करे। जबकि बहुसंख्यकवाद का अर्थ है बहुसंख्यक लोगों का अल्पसंख्यकों पर आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक वर्चस्व व उनकी संस्कृति का हरण

The number of Indians in the list of world’s richest people is growing. Such lists have been hitting the headlines for some years now. Forget those multibillionaires, not a single OBC, Dalit, Tribal or Pasmanda Muslim figures in the list of India’s richest people. At this point, you might be reminded of the industrialists associated with Dalit Chamber of Commerce (DICCI). The success achieved by these industrialists, while battling the odds, deserves appreciation but they stand nowhere compared with the richest Indian industrialists. They are paupers before them.

Why, for instance, one may ask, despite so many political vicissitudes, no Bahujan owns a “mainstream” newspaper or TV channel, at least in north India? This is an important question, but the answer is straightforward: No Bahujan has the economic muscle to launch a TV channel or a daily newspaper that can compete with the existing newspapers and channels. Merely claiming that the big Bahujan names have the means to do it serves no purpose in this context. In this age of media monopoly, launching a media house is akin to establishing an empire. And no one, barring the richest 100-150 Indians, has that much money. And no Bahujan figures in this list.

Be that as it may, the objective of social justice is neither limited to securing jobs for the Bahujans nor to producing multimillionaires. In this context, one has to but agree with the formulation of H.L. Dushad, founder of the Bahujan Diversity Mission, that ensuring social diversity in all centres of power and in the ownership of all resources is the only way to bring about social justice. Reservation is an important first step in that direction. However, it is essential that we don’t stop here or lose sight of the road ahead. With this issue of FORWARD Press we are launching a discourse on the different dimensions of social justice. In the forthcoming issues, we will be publishing more material on this subject in a bid to widen the concept of social justice. ■

दलित, न कोई आदिवासी, न कोई पसमांदा मुसलमान। हो सकता है आपको इस संदर्भ में दलित चैंबर ऑफ कामर्स (डिकी) से जुड़े उद्योगपतियों की याद आए। जाति आधारित प्रताड़ना के बावजूद सफल हुए उन उद्योगपतियों का हौसला काबिले तारीफ है, लेकिन वास्तविकता यह है कि भारत के जिन अमीर लोगों की सूचियां समय-समय पर जारी होती रहती हैं, उनके सामने डिकी से जुड़े उद्योगपतियों की आर्थिक हैसियत कुछ भी नहीं है। वहां तो वे पहाड़ के नीचे खड़े उंट की तरह ही दिखेंगे।

उदाहरण के लिए हम यह विचार करें कि आखिर क्या कारण है कि राजनीतिक रूप से इतनी जीतों के बावजूद आज तक, कम से कम उत्तर भारत में, बहुजन समुदाय के किसी व्यक्ति के पास कोई अखबार या टीवी चैनल नहीं है, जिसे ‘मुख्यधारा’ का कहा जा सके? यह एक बड़ा सवाल है, जिसका सीधा सा उत्तर है कि उत्तर भारत के बहुजन समुदायों के किसी व्यक्ति की आर्थिक हैसियत इतनी नहीं है, जितना उन मुख्यधारा के अखबारों, टीवी चैनलों का मुकाबला करने लायक एक नया अखबार या टीवी चैनल खड़ा करने के लिए होनी चाहिए। इस संदर्भ में इसका या उसका नाम लेना व्यर्थ की बातें हैं। मीडिया मेनोपॉली के इस समय में एक नये समाचार-माध्यम समूह की स्थापना करना, एक नये साम्राज्य की स्थापना करना है, उसके लिए जितना धन चाहिए, उतना सिर्फ उन्हीं के पास है, जो भारत के सबसे अमीर 100-150 लोगों की सूची में हैं। और उस सूची में कोई बहुजन नहीं है।

बहरहाल, सामाजिक न्याय का उद्देश्य निश्चित रूप से न तो बहुजन तबकों को नौकरियों तक सीमित रखना है, न अरबपति पैदा करना ही। लेकिन इस मामले में हमें भारत में ‘बहुजन डायवर्सिटी मिशन’ के संस्थापक एचएल दुसाध से सहमत होना होगा कि सत्ता के सभी केंद्रों और सभी प्रकार के संसाधनों के मालिकाना हक में सामाजिक-विविधता ही सामाजिक न्याय का एक मात्र कारगर उपाय है। आरक्षण उस दिशा में चलने के लिए जरूरी आरंभिक कदम भर है। लेकिन आवश्यक यह है कि हम पहली मंजिल पर ही न रूक जाएं बल्कि आगे के रास्तों पर भी नजर रखें।

फ़ॉरवर्ड प्रेस का यह अंक ‘सामाजिक न्याय’ के विभिन्न आयामों पर विमर्श की दिशा में एक शुरुआत है। अगले अंकों में भी हम इस विषय पर सामग्री प्रकाशित करेंगे तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा को और विस्तार देने की कोशिश करेंगे। ■